कहते थे, और कम-से-कम अपने घर को दोनों हाथों और दोनों पैरों का जोर लगाकर उससे बचाए रखना चाहते थे; इसलिए जब एक दिन प्रेमा के पिता उसके पास पहुँचे और केशव से प्रेमा के विवाह का प्रस्ताव किया, तो बूढ़े पण्डित जी अपने आप में न रह सके। धुँधली आँखें फाड़कर बोले-आप भंग तो नहीं खा गये हैं? इस तरह का सम्बन्ध और चाहे जो कुछ हो, विवाह नहीं है। मालूम होता है, आपको भी नये जमाने की हवा लग गयी।

बूढ़े बाबू जी ने नम्रता से कहा-मैं खुद ऐसा सम्बन्ध नहीं पसन्द करता। इस विषय में मेरे भी वही विचार हैं, जो आपके; पर बात ऐसी आ पड़ी है कि मुझे विवश होकर आपकी सेवा में आना पड़ा। आजकल के लड़के और लड़कियाँ कितने स्वेच्छाचारी हो गये हैं, यह तो आप जानते ही हैं। हम बूढ़े लोगों के लिए अब अपने सिद्धान्तों की रक्षा करना कठिन हो गया है। मुझे भय है कि कहीं ये दोनों निराश होकर अपनी जान पर न खेल जायँ।

बूढ़े पण्डित जी जमीन पर पाँव पटकते हुए गरज उठे-आप क्या कहते हैं, साहब! आपको शरम नहीं आती? हम ब्राह्मण हैं और ब्राह्मणों में भी कुलीन। ब्राह्मण कितने ही पतित हो गये हों, इतने मर्यादा-शून्य नहीं हुए हैं कि बनिये-बक्कालों की लडक़ी से विवाह करते फिरें! जिस दिन कुलीन ब्राह्मणों में लड़कियाँ न रहेंगी, उस दिन यह समस्या उपस्थित हो सकती है। मैं कहता हूँ, आपको मुझसे यह बात कहने का साहस कैसे हुआ?

बूढ़े बाबू जी जितना ही दबते थे, उतना ही पण्डित जी बिगड़ते थे। यहाँ तक कि लाला जी अपना अपमान ज्यादा न सह सके, और अपनी तकदीर को कोसते हुए चले गये।

उसी वक्त केशव कालेज से आया। पण्डित जी ने तुरन्त उसे बुलाकर कठोर कण्ठ से कहा-मैंने सुना है, तुमने किसी बनिये की लडक़ी से अपना विवाह कर लिया है। यह खबर कहाँ तक सही है?

केशव ने अनजान बनकर पूछा-आपसे किसने कहा?

%किसी ने कहा। मैं पूछता हूँ, यह बात ठीक है, या नहीं? अगर ठीक है, और तुमने अपनी मर्यादा को डुबाना निश्चय कर लिया है, तो तुम्हारे लिए हमारे घर में कोई स्थान नहीं। तुम्हें मेरी कमाई का एक धेला भी नहीं मिलता। मेरे पास जो कुछ है, वह मेरी अपनी कमाई है, मुझे अख्तियार है कि मैं उसे जिसे चाहूँ, दे दूँ। तुम यह अनीति करके मेरे घर में कदम नहीं रख सकते।%

केशव पिता के स्वभाव से परिचित था। प्रेमा से उसे प्रेम था। वह गुप्त रूप से प्रेमा से विवाह कर लेना चाहता था! बाप हमेशा तो बैठे न रहेंगे। माता के स्नेह पर उसे विश्वास था। उस प्रेम की तरंग में वह सारे कष्टों को झेलने के लिए तैयार मालूम होता था; लेकिन जैसे कोई कायर सिपाही बन्दूक के सामने जाकर हिम्मत खो बैठता है और कदम पीछे हटा लेता है, वही दशा केशव की हुई। वह साधारण युवकों की तरह सिद्धान्तों के लिए बड़े-बड़े तर्क कर सकता था,जबान से उनमें अपनी भक्ति की दोहाई दे सकता था; लेकिन इसके लिए यातनाएँ झेलने की सामर्थ्य उसमें न थीं। अगर वह अपनी जिद पर अड़ा और पिता ने भी अपनी टेक रखी, तो उसका कहाँ ठिकाना लगेगा? उसका जीवन ही नष्ट हो जायगा।

उसने दबी जबान से कहा-जिसने आपसे यह कहा है, बिल्कुल झूठ कहा है।

पण्डित जी ने तीव्र नेत्रों से देखकर कहा-तो यह खबर बिलकुल गलत है?

%जी हाँ, बिलकुल गलत।%

%तो तुम आज ही इसी वक्त उस बनिये को खत लिख दो और याद रखो कि अगर इस तरह की चर्चा फिर कभी उठी,तो तुम्हारा सबसे बड़ा शत्रु होऊँगा। बस, जाओ।

केशव और कुछ न कह सका। वह यहाँ से चला, तो ऐसा मालूम होता था कि पैरों में दम नहीं है।

दूसरे दिन प्रेमा ने केशव के नाम यह पत्र लिखा-

%प्रिय केशव !%

तुम्हारे पूज्य पिताजी ने लाला जी के साथ जो अशिष्ट और अपमानजनक व्यवहार किया है, उसका हाल सुनकर मेरे मन में बड़ी शंका उत्पन्न हो रही है। शायद उन्होंने तुम्हें भी डाँट-फटकार बतायी होगी, ऐसी दशा में मैं तुम्हारा निश्चय सुनने के लिए विकल हो रही हूँ। तुम्हारे साथ हर तरह का कष्ट झेलने को तैयार हूँ। मुझे तुम्हारे पिताजी की सम्पत्ति का मोह नहीं है, मैं तो केवल तुम्हारा प्रेम चाहती हूँ और उसी में प्रसन्न हूँ। आज शाम को यहीं आकर भोजन करो। दादा और माँ दोनों तुमसे मिलने के लिए बहुत इच्छुक हैं। मैं वह स्वप्न देखने में मग्न हूँ जब हम दोनों उस सूत्र में बँध जायँगे, जो टूटना नहीं जानता। जो बड़ी-से-बड़ी आपत्ति में भी अटूट रहता है।

तुम्हारी-

प्रेमा!

सन्ध्या हो गयी और इस पत्र का कोई जवाब न आया। उसकी माता बार-बार पूछती थी-केशव आये नहीं? बूढ़े लाला भी द्वार की ओर आँख लगाये बैठे थे। यहाँ तक कि रात के नौ बज गये, पर न तो केशव ही आये, न उनका पत्र।

प्रेमा के मन में भाँति-भाँति के संकल्प-विकल्प उठ रहे थे, कदाचित उन्हें पत्र लिखने का अवकाश न मिला होगा, या आज आने की फुरसत न मिली होगी, कल अवश्य आ जाएँगे। केशव ने पहले उसके पास जो प्रेम-पत्र लिखे थे, उन सबको उसने फिर पढ़ा। उनके एक-एक शब्द से कितना अनुराग टपक रहा था, उनमें कितना कम्पन था, कितनी विकलता, कितनी तीव्र आकांक्षा! फिर उसे केशव के वे वाक्य याद आए; जो उसने सैकड़ों ही बार कहे थे। कितनी बार वह उसके सामने रोया था। इतने प्रमाणों के होते हुए निराशा के लिए कहाँ स्थान था, मगर फिर भी सारी रात उसका मन जैसे सूली पर टँगा रहा।

प्रातःकाल केशव का जवाब आया। प्रेमा ने काँपते हुए हाथों से पत्र लेकर पढ़ा। पत्र हाथ से गिर गया। ऐसा जान पड़ा,मानो उसकी देह का रक्त स्थिर हो गया हो। लिखा था-

%मैं बड़े संकट में हूँ, कि तुम्हें क्या जवाब दूँ! मैंने इधर इस समस्या पर खूब ठण्डे दिल से विचार किया है और इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि वर्तमान दशाओं में मेरे लिए पिता की आज्ञा की उपेक्षा करना दुस्सह है। मुझे कायर न समझना। मैं स्वार्थी भी नहीं हूँ, लेकिन मेरे सामने जो बाधाएँ हैं उन पर विजय पाने की शक्ति मुझमें नहीं है। पुरानी बातों को भूल जाओ। उस समय मैंने इन बाधाओं की कल्पना न की थी।%

प्रेमा ने एक लम्बी, गहरी, जलती हुई साँस खींची और उस खत को फाड़कर फेंक दिया। उसकी आँखों से अश्रुधार बहने लगी। जिस केशव को उसने अपने अन्तःकरण से वर लिया था, वह इतना निष्ठुर हो जायगा, इसकी उसको रत्ती भर भी आशा न थी। ऐसा मालूम पड़ा, मानो, अब तक वह कोई सुनहला स्वप्न देख रही थी; पर आँख खुलने पर वह सब कुछ अदृश्य हो गया। जीवन में जब आशा ही लुप्त हो गयी, तो अब अन्धकार के सिवा और क्या रहा! अपने हृदय की सारी सम्पत्ति लगाकर उसने एक नाव लदवायी थी, वह नाव जलमग्न हो गयी। अब दूसरी नाव कौन वहाँ से लदवाये; अगर वह नाव टूटी है तो उसके साथ वह भी डूब जायगी।

माता ने पूछा-क्या केशव का पत्र है?

प्रेमा ने भूमि की ओर ताकते हुए कहा-हाँ, उनकी तबीयत अच्छी नहीं है-इसके सिवा वह और क्या कहे? केशव की निष्ठुरता और बेवफाई का समाचार कहकर लज्जित होने का साहस उसमें न था।दिन भर वह घर के काम-धन्धों में लगी रही, मानो उसे कोई चिन्ता ही नहीं है। रात को उसने सबको भोजन कराया,खुद भी भोजन किया और बड़ी देर हारमोनियम पर गाती रही।

मगर सबेरा हुआ, तो उसके कमरे में उसकी लाश पड़ी हुई थी। प्रभात की सुनहरी किरणें उसके पीले मुख को जीवन की आभा प्रदान कर रही थीं।

मिट्टी के दीये

मैं एक सभा में गया था। अछूतों की सभा थी। अछूत की कल्पना ही मेरे हृदय को आंसुओं से भर देती है। वहां पहुंच कर भी मैं बहुत दुखी और उदास था। मनुष्य ने मनुष्य के साथ यह क्या किया है? मनुष्य-मनुष्य के बीच अलंघ्य दीवारें खड़ी करने वाले लोग भी धार्मिक समझे जाते हैं! धर्म का इससे अधिक पतन और क्या हो सकता है? यदि यही धर्म है तो फिर अधर्म क्या है? ऐसा प्रतीत होता है कि अधर्म के अड्डों ने धर्म की पताकाएं चुरा ली हैं और शैतान के शास्त्र परमात्मा के शास्त्र बने हुए हैं।

धर्म भेद नहीं, अभेद है। धर्म द्वैत नहीं, अद्वैत है। धर्म तो दीवारें बनाने में नहीं, मिटाने में है। लेकिन तथाकथित धर्म भेद ही उपजाते रहे हैं और दीवारें ही बनाते रहे हैं। उनकी शक्ति मनुष्य को तोड़ने और विभाजित करने में ही सक्रिय रही है। निश्चय ही यह अकारण नहीं हुआ है। असल में मनुष्य को मनुष्य से अलग किए बिना न तो संगठन बन सकते हैं, और न शोषण ही हो सकता है। यदि मनुष्यता समान है और एक है, तो शोषण के मूलाधार ही नष्ट हो जाते हैं। शोषण के लिए तो असमानता अनिवार्य है, वर्ग और वर्ण आवश्यक हैं। इसीलिए, धर्म अनेक रूपों में असमानता के, वर्गों और वर्णों के समर्थक रहे हैं। वर्ग-वर्णहीन समाज तो अनायास ही शोषण-विरोधी हो जाता है। मनुष्यता की समानता को स्वीकार करना शोषण को अस्वीकार करना है।

फिर मनुष्य-मनुष्य में भेद डाले बिना संगठन और संप्रदाय भी नहीं बन सकते हैं। भेद से भय आता है, द्वेष और घृणा आती है, और अंततः शत्रुता पैदा होती है। शत्रुता से संगठन जन्मते हैं। संगठन मित्रता से नहीं, शत्रुता से जन्मते हैं। प्रेम नहीं, घृणा ही उनकी आधारशिला है। शत्रुता के भय से संगठन पैदा होते हैं। संगठन शक्ति देते हैं। शक्ति शोषण का सामर्थ्य बनती है और अधिकार-लिप्सा की तृप्ति भी। वही फैल कर साम्राज्य-लिप्सा भी बन जाती है। धर्म ऐसे ही छिपे-छिपे राजनीति बन जाते हैं। धर्म आगे चलता है, राजनीति पीछे चलती है। धर्म आवरण ही रह जाता है और राजनीति प्राण बन जाती है। वस्तुतः जहां संगठन हैं, संप्रदाय हैं, वहां धर्म नहीं है, बस राजनीति ही है। धर्म तो साधना है। वह संगठन नहीं है। अनेक धर्म-संगठनों के नाम से भिन्न-भिन्न राजनीतियां ही अपनी चालें चलती रहती हैं। संगठन के अभाव में धर्म तो हो सकता है, लेकिन धर्म नहीं हो सकते हैं, और न ही हो सकते हैं पुजारी और पुरोहित और उनका व्यवसाय। परमात्मा को भी व्यवसाय बना लिया गया है। उसके साथ भी न्यस्तस्वार्थ संबंधित हो गए हैं। इससे ज्यादा अशोभन और अधार्मिक क्या हो सकता है? लेकिन प्रचार की महिमा अपार है और सतत प्रचार से निकट असत्य भी सत्य बन जाते हैं। फिर जो पुजारी, पुरोहित स्वयं शोषण में हैं, वे यदि शोषण-व्यवस्था के समर्थक हों तो आश्चर्य ही क्या है? धर्मों ने समाज की शोषण-व्यवस्था के लिए भी सुदृढ़ स्तंभों का काम किया है। काल्पनिक सिद्धांतों का जाल बुन कर उन्होंने शोषकों को पुण्यात्मा और शोषितों को पापी सिद्ध किया है। शोषितों को समझाया गया है कि यह उनके दुष्कर्मों का फल है। सच ही धर्मों ने लोगों को खूब अफीम खिलाई है।

एक अछूत वृद्ध ने सभा के अंत में मुझसे पूछा था: "क्या मैं मंदिरों में आ सकता हूं?" मैंने कहा: "मंदिरों में? लेकिन किसलिए? परमात्मा तो स्वयं ही पुरोहितों के मंदिरों में कभी नहीं जाता है।"

प्रकृति के अतिरिक्त परमात्मा का और कोई मंदिर नहीं है। शेष सब मंदिर और मस्जिद पुरोहितों की ईजाद हैं। परमात्मा से उन मंदिरों का दूर का भी संबंध नहीं। परमात्मा और पुरोहितों में कभी बोल-चाल ही नहीं रहा। मंदिर पुरोहितों की, और पुरोहित शैतान की सृष्टि हैं। वे शैतान के शिष्य हैं। इस कारण ही उनके शास्त्र और संप्रदाय मनुष्य को मनुष्य से लड़ाने के केंद्र रहे हैं। उन्होंने बातें तो प्रेम की की हैं, और जहर घृणा का फैलाया है। असल में जहर शक्कर-चढ़ी गोलियों में देना ही आसान होता है। फिर भी मनुष्य पुरोहितों से सावधान नहीं है। जब भी उसे परमात्मा का स्मरण आता है, वह पुरोहितों के चक्कर में पड़ जाता है। मनुष्य के परमात्मा से संबंध क्षीण होने का आधारभूत कारण यही है। पुरोहित सदा से ही परमात्मा की हत्या करने में संलग्न रहे हैं। उनके अतिरिक्त परमात्मा का हत्यारा और कोई भी नहीं है। परमात्मा को चुनना है तो पुजारी को नहीं चुना जा सकता है। उन दोनों की पूजा एक ही साथ नहीं की जा सकती। पुजारी जैसे ही मंदिर में प्रवेश करता है, वैसे ही परमात्मा मंदिर से बाहर हो जाता है। परमात्मा से नाता जोड़ने के लिए पुरोहित से मुक्त होना आवश्यक है। भक्त और भगवान के बीच वही बाधा है। प्रेम किसी को भी बीच में पसंद नहीं करता है।

एक भोर की बात है। अभी अंधेरा ही था। जैसे ही मंदिर के द्वार खुले कि एक अछूत मंदिर की सीढ़ियां चढ़ कर द्वार पर पहुंच गया। वह द्वार के भीतर पैर रखने को ही था कि पुजारी क्रोध से गरजा: "रुक, रुक, पामर! एक पग भी आगे बढ़ाया तो तेरा सर्वनाश हो जाएगा। मूढ़! परमात्मा के मंदिर की पवित्र सीढ़ियां तूने अपवित्र कर दी हैं।" सहमे हुए अछूत ने उठा हुआ पैर वापस ले लिया। उसकी आंखों में आंसू आ गए। परमात्मा के लिए उसके प्यासे हृदय में जैसे किसी ने छुरी भोंक दी थी। वह रोता हुआ बोला: "हे परमात्मा, मेरा ऐसा कौन सा पाप है, जिसके कारण तेरे दर्शन मुझे नहीं हो सकते हैं?" परमात्मा की ओर से पुजारी ने कहा: "तू जन्म से अशुद्ध है, पाप-भंडार है।" उस अछूत ने प्रार्थना की: "फिर मैं शुद्धि के लिए साधना करूंगा, लेकिन प्रभु-दर्शन के बिना नहीं मरना चाहता हूं।" और फिर वर्षों तक उस अछूत का कोई पता न चला। वह न मालूम कहां चला गया था। लोग उसे भूल ही गए थे और तब अचानक एक दिन वह गांव में आया। गांव के प्रवेश-द्वार पर ही वह देवालय था। पुजारी ने उसे देवालय के पास से जाते देखा। एक अपूर्व तेज उसके चेहरे पर था। एक अपूर्व शांति उसकी आंखों में थी। उसके आसपास भी जैसे प्रकाश का एक मंडल था। लेकिन उसने देवालय की ओर आंख भी उठा कर नहीं देखा। वह उस ओर से बिल्कुल निरपेक्ष और असंग दीख रहा था। लेकिन पुजारी से न रहा गया। उसने उसे पुकारा और पूछा: "क्यों रे! क्या शुद्धि की साधना पूरी कर ली?" वह अछूत इस पर हंसा और उसने स्वीकृति में सिर हिलाया। पुजारी ने पूछा: "फिर मंदिर में क्यों नहीं आता?" वह अछूत बोला: "महाराज, क्या करूं आकर? प्रभु ने दर्शन दिए तो कहा: मेरी खोज में मंदिर क्यों गया था? वहां कुछ भी नहीं है। मैं तो स्वयं ही कभी उन मंदिरों में नहीं गया हूं। और जाऊं भी तो क्या पुजारी मुझे वहां घुसने दे सकते हैं?